

धर्म एवं अध्यात्म

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

धर्म और अध्यात्म भारतीय संस्कृति के कण-कण में समाया हुआ है। धर्म बहुत व्यापक शब्द है। धर्म को सम्प्रदाय से जोड़ देने के कारण धर्म की व्याख्या संकुचित हो जाती है। वस्तुतः जो धारण किया जाता है वह धर्म है। शुभ विचारों को धारण करना धर्म है। धर्म शाश्वत तत्व है। सम्प्रदाय धर्म को संकीर्ण कर देता है। वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। सभी तत्वों का अपना-अपना गुण धर्म होता है। उससे उन्हें दूर नहीं किया जा सकता। स्वभाव कभी बदलता नहीं है। स्वभाव शाश्वत है। आत्मा का भी स्वभाव ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य है। आत्मा शाश्वत है, अजर-अमर और अविनाशी है, आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है। शरीर और आत्मा भिन्न-भिन्न हैं। शरीर पुद्गल है और आत्मा चेतन।

भारतीय संस्कृति अध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों से संवलित है। हमारी संस्कृति नैतिक आचार विचार व व्यवहार का पालन करने के लिए सदैव प्रेरित करती रहती है। यहां का प्रत्येक कार्य संस्कार जन्य है। जन्म से लेकर के मृत्यु पर्यन्त संस्कारों की एक श्रृंखला है जिससे बद्ध होकर के जीवन अध्यात्म एवं नैतिक युक्त हो जाता है। अध्यात्म का अर्थ है आत्मा में रमण करना। यहां पर सभी जीवों में आत्म-दर्शन का बोध बताया गया है। अणु से लेकर विराट् तक सर्वत्र आत्मा का दर्शन करना चाहिए यह भारतीय संस्कृति का संदेश है। आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है। आत्म स्वातन्त्र्य मानव जीवन की सर्वोत्कृष्ट संपदा है। व्यक्ति अपने आप में एक विचार जगत लेकर चलता है, उसकी प्रवृत्तियाँ निरन्तर विचारों से प्रभावित होती है।

धर्म बहुत ही व्यापक शब्द है। इसके अंतर्गत भावों की शुद्धता, मन की निर्मलता और सात्विक विचार का अधिक महत्व है। धर्म मूलतः किसी वस्तु का सहज गुण है। जैसे पानी का धर्म शीतलता, अग्नि का धर्म उष्णता और पृथ्वी का धर्म गंध है। इसी प्रकार जितने भी पदार्थ हैं उन सबका स्वाभाविक धर्म होता है। जब पदार्थों में विकृति उत्पन्न की जाती है तो उनके गुण

धर्म भी बदल जाते हैं। आत्मा एक ऐसा तत्व है जिसमें किसी प्रकार की विकृति नहीं आती है। यह अपने स्वरूप में चैतन्य युक्त है। शेष जितने भी पदार्थ हैं वे भौतिक तत्व हैं। उन पदार्थों में परिवर्तन, परिवर्धन होता रहता है।

आत्मा और जड़ का जब संयोग होता है तो जड़ पदार्थ भी आत्मवत् प्रतीत होने लगता है। शरीर जड़ है और आत्मा चेतन। शरीर से जब आत्मा का संयोग होता है तो जड़ शरीर भी आत्मवत् प्रतीत होने लगता है। शरीर से अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कार्य किये जाते हैं। मूलतः आत्मा के शुद्धि और अशुद्धि का कोई प्रश्न नहीं है। शरीर में शुद्धता और अशुद्धता देखी जाती है। यदि मानव अच्छा कर्म करता है तो पुण्यलोक की प्राप्ति होती है और यदि बुरा कार्य करता है तो उसे नरक की प्राप्ति होती है। इसीको ध्यान में रखकर यह बात कही गयी है कि धर्म आत्मा को शुद्ध करता है।

जीवनकाल में धर्म ही मनुष्य को त्राण दे सकता है। धर्म की व्याख्या करने के लिए इसके लौकिक और पारलौकिक स्वरूप को समझना आवश्यक है। लौकिक धर्म वह धर्म है जिसे हम इस लोक में करते हैं और उसका फल भोगते हैं। पारलौकिक धर्म इस लोक से परे है और वहीं मानव जीवन की सच्ची कमाई है। इसी धर्म को प्राप्त करने के लिए मानव को प्रयास करना चाहिए। भोगवाद की आसुरीधारा में न बहकर आत्मकल्याण का सर्वप्रथम ध्यान रखें और अर्थ तथा काम के साथ ही धर्म और मोक्ष के साधन के लिये भी प्रयत्नशील रहें।

मनुष्य का आध्यात्मिक विकास तभी सम्भव है, जब वह अपना आचरण शुद्ध रखे और संयम नियम का पालन करता रहे। मलिनता और अपवित्रता चाहे बाह्य हो अथवा चाहे आन्तरिक, मनुष्य के उच्चभावों को नष्ट करके उसे पाप कर्मों की तरफ प्रेरित करती हैं। इसलिये मानव को सुसंस्कारित बनाने के उद्देश्य से अनेक नियम बनाये गये हैं, जिससे वे अनुशासन, मर्यादा, नैतिकता आदि की शिक्षा प्राप्त करके वास्तविक मनुष्यता का विकास कर सकें। जन्म के समय मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में विशेष अन्तर नहीं होता, वरन् यदि देखा जाय तो मनुष्य का नवजात शिशु अन्य पशुओं के बच्चे की अपेक्षा अधिक असमर्थ और असहाय स्थिति में होता है। कुछ बड़ा होने पर भी वह स्वयं कोई नयी बात कर सकने में असमर्थ होता है। परिवार और समाज तथा अपने चतुर्दिक वातावरण से वह बहुत कुछ सीखता है। इसलिये जैसे

संस्कार उसमें डाले जायेंगे वैसा ही आचरण वह समाज में करेगा। जिस देश काल व समाज में आचारण की जो पवित्र परम्परायें चलती रहती हैं, वह सदाचार है।

सदाचार एक ऐसा व्यापक सार्वभौम तत्त्व है जो देश काल की संकीर्ण सीमा से आबद्ध नहीं किया जा सकता। अहिंसा, सत्यादि का पालन मानव को करना चाहिए। महाभारत में वेदव्यास ने भी यही कहा है कि सभी आगमों में आचार ही प्रधान है—‘सर्वागमानां आचारः प्रथमं परिकल्पते’। आचार से ही धर्म की उत्पत्ति होती है। आचार धर्म का मेरुदण्ड है, जिसके बिना धर्म टिक नहीं सकता। आचार का पालन करने वाला मानव सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है। इसीलिए धर्म को आत्मशुद्धि का साधन माना गया है।